**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 15-19**

# निर्गुण भक्ति परम्परा और बेनामी जी

**सतीश कुमार, राम जी शर्मा**

काशी हिंदू विद्यापीठ विश्वविद्यालय वारानाशी, उत्तर प्रदेश, भारत।

## 1. प्रस्तावना

''भक्ति' "भज्' धातु से बना है जिसका तात्पर्य भाग लेना अथवा भाग लेकर लीन हो जाना समझा जाता है। शाण्डिल्य का मत है कि आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है। "व्यास जी पूजा आदि प्रगाढ़ अनुराग होने को भक्ति कहते हैं।[1] आचार्य गर्ग की धारणा है कि "भगवान की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।[2] महर्षि नारद का मत है–"अपने अखिल आचरणों को तदर्पित करना और उस प्रभु के विस्मरण में परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[3] श्रीमद्भागवत में "अहैतुक एवं निष्काम भाव से भगवान् में अनुरागमय हो जाने को भक्ति कहा गया है।[4]

संत बेनामी जी की भक्ति–भावना ज्ञान–मार्गी संतों की भक्ति–भावना के अनुरूप चलती हुई उत्तरोत्तर व्यापक एवं विशद होती चली जाती है। इस व्यापकता का प्रमाण तब मिला है, जब वे राम, रावण, कृष्ण, प्रह्लाद आदि का नामोल्लेख अपने काव्य में करते हैं। इस संदर्भ में यहाँ यह बता देना अनिवार्य है कि ये निर्गुण के अनुयायी होने पर भी वैष्णव धर्म से मुक्त नहीं है। ये केवल उपासना के क्षेत्र में ही वैष्णव भक्ति से भिन्न विचार रखते हैं, क्योंकि निर्गुण–पंथीय धारणानुसार इन्होंने उपासना के क्षेत्र में वाल्मीकि और तुलसी के राम से भिन्न राम को स्वीकार किया है।

## 2. भक्ति मार्ग का स्वरूप

"मानव सुख–दुःख के भय संसार से बंधा रहता है और इस कारण वास्तविक एवं नित्यानंद का उपभोग नहीं कर पाता। आनंद का स्त्रोत सत्चित् आनंद परमेश्वर है। उसी के साथ रहने, उसका गुणगान करने, उसी में संलग्न रहने और समस्त द्वन्द्वों से सदा के लिए मुक्त होने से आनंद प्राप्त होता है। शाश्वत् आनंद की प्राप्ति का यह साधना–पथ ही भक्ति मार्ग कहलाता है।[5] "आनंदधाम परमेश्वर की गोद में बैठकर या उसको गोद में लेकर भक्त आनंदमय हो जाता है।[6] "ईश्वर के प्रति उसके मन में पराकाष्ठा की रति है।[7]

"कर्म, ज्ञान और भक्ति मुख्य साधना मार्ग है। सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाने के साधनों अथवा तरीकों को 'योग' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इस प्रकार धार्मिक जगत् में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग प्रसिद्ध हुए। मानसिक संयम पर आधारित राजयोग को भी कुछ लोग प्रमुख साधना–पथ मानते हैं।[8]

"भक्ति योग में ईश्वर को अंतर्यामी परमसत्य मानकर उस पर दत्तचित रहना अपेक्षित है। वासनाओं का अंत किए बिना आलसी ज्ञानवर्द्धक ध्यान असंभव है। निष्काम भावना से प्रेरित कर्मानुष्ठान ही वासनाओं को दबाकर ज्ञान का पोषण कर सकता है। स्वार्थ से प्रेरित होकर समस्त वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। असल में निष्काम कर्म ईश्वर विषयक ज्ञान की वृद्धि में और वह ज्ञान सच्ची भक्ति की प्राप्ति में सहायक बन जाता है।[9]

"भक्ति–भावना को दृढ़ करने वाले साधनों में ईश्वर का आश्रय लेते हुए विभिन्न कर्त्तव्यों का अनुष्ठान, उसके प्रति श्रद्धा, तप, संयम एवं व्रत के द्वारा भोगों का त्याग, अहिंसा, आस्तेय, अपरिग्रह, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का सेवन, विषयों से निवृत्त होकर मन को देवीय, आध्यात्म पथ पर चलाना, पवित्रता प्राप्त करना, समस्त कामनाओं को ईश्वर पर केन्द्रित करना आदि प्रमुख है।[10] "जब मनुष्य अनुभव करता है कि आध्यात्मिक जीवन ही शाश्वत् एवं स्वतंत्र है, तो समस्त कर्मों को ईश्वर की इच्छा के समक्ष अर्पित करना ही बन्धुता मुक्ति आध्यात्म पथ पर चलाना, पवित्रता प्राप्त करना, समस्त कामनाओं को ईश्वर पर केन्द्रित करना आदि प्रमुख है।[11] "जब मनुष्य अनुभव करता है कि आध्यात्मिक जीवन ही शाश्वत् एवं स्वतंत्र है, तो समस्त कर्मों को ईश्वर की इच्छा के समक्ष अर्पित करना ही बन्धुता मुक्ति का सफल उपाय है। जब अंहकार छोड़कर शरणागति की भावना ग्रहण करता है। तब परमात्मा के दर्शन होते हैं।[12] नारद ने कहा है– जाति, सभ्यता, सुंदरता कुल, धन या संपत्ति के आधार पर कोई भेद–भावना भक्तों के संसार में नहीं चलती। "भक्त चौराहे के दीपक के समान है। वह सबके लिए जलता है और उसके प्रकाश से लाभ उठाने का अधिकार भी सब को है। भक्तों के इष्ट देवता समस्त संसार के प्रतिनिधि बन जाते हैं।[13] भक्ति एक प्रकार का अनुराग है, जिसे साधक अपने से बड़े के प्रति श्रद्धा भाव के साथ प्रदर्शित करता है। किंतु वही यदि अपने से बराबरी वाले के प्रति प्रकट किया जाए, तो उसे बहुधा प्रेम का नाम दिया जाता है। भक्ति–भावना का प्राधान्य वैदिक और द्रविड़ संस्कृतियों के समय से ही भारत में रहा है। फिर भी, हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत शैव, शाक्त, सूफी, जैन और बौद्ध धर्मों की वाणियों के प्रचार–प्रसार के समय को माना जाता है। जब यह भक्ति–भावना जन–जन के हृदय में प्रवाहित हो रही थी। संत कवियों ने लोक भाषाओं का प्रयोग करते हुए जनता की आर्तवाणी को ईश्वरीय करूणा के लेप से शीतलता प्रदान की।

बेनामी जी ने अपने जीवन की पाठशाला में जो कुछ अर्जित किया उसी अनुभूत सत्य का पाठ अपने साहित्य के माध्यम से हमें अर्पित कर दिया है। जिस प्रकार कबीर ने स्पष्ट किया है कि प्रभु को अपने हृदय में ही खोजना चाहिए, मंदिर, मस्जिदों में उसे ढूंढ़ना व्यर्थ है। उसी प्रकार की भावना बेनामी जी की भी है। बेनामी जी अपने हृदय में स्थित ईश्वर की भावपूर्ण भक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हैं। इनका कथन हैः–

> "घघ्या घट भीतर वृत्ति करो, आत्म तत्त्व विचार।
> जा धन को खोजत फिरे, सो धन पास निहार।।"[14]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी भक्ति प्रभु की भावपूर्ण भक्ति–भावना पर आधारित है। इनकी धारणा है कि प्रभु भक्ति के अभाव में जीवन तुच्छ है। इनका कथन है कि भगवद्भक्ति ही मानव जीवन का सार है। जो लोग ईश्वर से विमुख होकर जीवन–यापन करते हैं बेनामी जी ऐसे जीवन को व्यर्थ मानते हैं। द्वैत का परित्याग और अद्वैत को स्वीकार यही इनकी भक्ति का प्राण तत्त्व है।

### 3. मधुरा भक्ति

अब इनकी मधुरा भक्ति पर विचार करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना अत्यावश्यक है कि इनकी की भक्ति का आधार निर्गुण गुण रहित सगुण परब्रह्म है, जिसका निवास वो घट–घट में मानते हैं। इनकी मधुरा भक्ति में तुलसी के राम के सौंदर्य का वर्णन एवं सूरदास के कृष्ण की बाल–लीला आदि में वर्णित रूप–सौंदर्य का माधुर्य नहीं है। इनके ब्रह्म का रूप कुछ इस प्रकार हैः–

"नमो अलख आनन्द, नमो निःष्कलंक विदेही।
नमो सगुण गुण रहित, नमो निज व्यापक देही।।"[15]

इस पद के माध्यम से इन्होंने अपनी मधुरा भक्ति के दर्शन भी करा दिए हैं। इस पद में प्रयुक्त 'बेनामी' शब्द इनके ईश्वर का ही प्रतीक है। बेनामी यहाँ कबीर के निर्गुण का पर्याय बनकर आया है। जिस प्रकर निर्गुण का कोई रूपाकार एवं गुण नहीं है, ठीक उसी प्रकार श्री बेनामी जी के ईश्वर भी 'बे–नाम' के हैं। अर्थात् उनका कोई नाम नहीं है। वे प्रत्येक मनुष्य का ही प्रतिरूप एवं घट–घट वासी हैं। मन की शुचिता, गुरू की असीम कृपा एवं ध्यान–योग के द्वारा उसे घट भीतर पहचानने की आवश्यकता है। इनका अपने आराध्य से अटूट संबधं जुड़ गया है। इनके प्रभु की विशेषता यह है कि वे सभी अनाथों के नाथ हैं, सबका पालन करने वाले हैं, सभी को दुःखों से मुक्ति दिलाने में समर्थ हैं। बेनामी जी कहते हैंः–

"नमो निरंजन रूप नमो पूरण प्रतिपालम्।
नमो अनाथन नाथ, नमो मेटो सब सालम्।।[16]

प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम का यह अन्यतम उदाहरण है और जहाँ अनन्य प्रेम हैं, वहाँ माधुर्य का भी अभाव नहीं हो सकता। नारदीय भक्ति अनन्य प्रेम की ही भक्ति है। वे अपने आराध्य के प्रेम में पूर्णतः अनुरक्त हैं। प्रेम का तो यही लक्षण बताया गया है कि अपने प्रिय के प्रेम में सदैव लीन रहना पड़ता है। तभी यह अगाध प्रेम कहला सकता है। वे दत्चित होकर प्रभु प्राप्ति की सूरत धारण करके अपने प्रेम को इसकी पराकाष्ठा तक ले जाना चाहते हैं।जिस किसी भी मनुष्य ने मानव शरीर धारण करके अपने भीतर विद्यमान ईश्वर को नहीं पहचाना, तो वे मानते हैं कि उस व्यक्ति का तो जीवन ही नष्ट हो गया। ये कहते भी हैंः–

"देह धरी तो देख ले, आपनो आपहि रूप।
सुरत शब्द निश्चय करो, आतम दीप स्वरूप।।[17]
"धिक–धिक ऐसे पुरूष को, तीनों पन दिये खोय।
बाल खेल तरूणी तरूण, वृद्ध चिंता अति जोय।।[18]
"नैन नीच मो को पहिचाने, खोले तो सब मे मोय जाने।
ऐसी दृष्टि लखे जो कोई, निश्चय मोसे मिलना होई।।[19]

इनकी माधुर्य भक्ति की पराकाष्ठा प्रभु मिलन ही है। इनके अनेक पद ऐसे हैं जिनमें ईश्वर मिलन का कामना की निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। जिस प्रकार मन का दूसरे मन से लगाव होता है, ठीक हृदय की यही मधुरता कवि की भक्ति में अनुभव की जा सकती है। इनका हृदय अपने ईश्वर की भक्ति में तन्मय हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य के रूप में इन्हें ब्रह्म का ही रूप दिखाई देता है। दिखाई भी क्यों न दे, इनका हृदय प्रभु में पूर्णतः पगा हुआ है। इनका हृदय अपने महबूब के हृदय में पूर्णतः लय हो चुका हैः–

"मन की मन पूजा करे, यही ब्रह्म की पूज।
जब मन में मन लय हुआ, यही ब्रह्म की सूज।।[20]

इनकी वाणी में मधुरा भक्ति का यह एक बेजोड़ नमूना है। मन से मन के मिलन के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होना मधुरा भक्ति में ही संभव है। इनकी यह भक्ति मन के द्वारा मन की पूजा है, तभी तो प्रेमा भक्ति में एकाग्रता की वांछित स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अपनी भक्ति को और आगे बढ़ाते हुए ये कहते हैं कि प्रभु की भक्ति यदि करनी ही है, तो ऐसी भक्ति करनी चाहिए कि सदा–सदा के लिए जीवात्मा अपने परमात्मा का सानिध्य प्राप्त कर सके, अनन्य प्रेमरस का पान कर सके। इनका कथन हैः–

"आना जाना ना बने, यही ब्रह्म की टेक।।[21]

इनकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ है कि यहाँ मरकर ही प्रभु का दीदार होना है, उनका सानिध्य प्राप्त हो सकता है, तो इन्हें मृत्यु का भी भय नहीं है, बल्कि मृत्यु तो इनके लिए आनन्द का विषय हैः–

"जा मरने से जग डरे, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरण परमानन्द।।[22]

ये कहते हैं कि वे तो प्रभु के प्रेम में बिगड़ गए हैं। इसके साथ–साथ ये कहते हैं कि मेरी तरह दूसरे लोगों को नहीं बिगड़ना चाहिए और यदि कोई प्रभु के प्रेम में बिगड़ना ही चाहता है तो इनकी ही भांति पूर्णतः बिगड़ जाना चाहिए। क्योंकि प्रेम के रस में डूबकर जो बिगड़ जाता है उसके सुधार का कोई उपाय शेष नहीं बचता। इनका कथन हैः–

"बेनामी बिगरा सही, और मत बिगरो कोय।
जो बिगरे सो बिगरयो, बेनामी सा होय।।[23]

इनका कथन है कि यदि प्रभु की भक्ति करनी है तो मन से समस्त कामनाओं, स्वार्थों आदि को निकाल कर हृदय को पूर्णतः शुद्ध करना होगा, तभी प्रभु की भक्ति जीव को प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। क्योंकि वह महबूब है, दिलबर है, जो हृदय के भीतर ही विद्यमान है। निःस्वार्थ भावमय होकर अपने दिलबर का हृदय में ही दीदार हो जाएगाः–

"मोटा मन पतरा करो, धंस हृदय में ढूंढ।
ढूंढ मिली धोका गया, यही भूल में सूज।।[24]

भारतीय संस्कृति में प्रेम को अति पवित्र वस्तु के रूप में देखा जाता है। वे भी यही मानते हैं कि प्रभु के प्रति जब हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, तो अज्ञान का तिमिर टिक नहीं पाता। ईश्वर प्रेम की लगन उसे ईश्वरोन्मुख कर देती है। इससे मनुष्य आत्मनिर्मल एवं शुद्ध भाव से अपने प्रभु प्रेम को चरमोत्कर्ष तक ले जाने हेतु प्रयासरत रहता है। इनका ईश्वर प्रेम इतना अगाध है कि वे अपने प्रभु के साथ होली खेलने का आग्रह करते हुए दिखाई देते हैंः–

"होरी खेलन दैरी ननदिया।
जो तू कहेगी सोइ मैं करूँगी, अनहद की धुन लैरी ननदिया।।
आदि अंत अरू मध्य विचारो, ज्यों का त्यों ही हैरी ननदिया।
दुई धूल को दूर बगाओ, ज्ञान गुलाल उड़ैरी ननदिया।
बेनामी ऐसी होरी खेलै, अब कुछ नहीं न परैरी ननदिया।।[25]

इन्होंने यहाँ भक्ति के माधुर्य के साथ–साथ अद्वैत का समर्थन एवं आत्मज्ञान के पवित्र प्रकाश का भी उल्लेख किया है। यह भक्ति माधुर्य अन्य संत कवियों की ही भांति दिखाई पड़ता है। संत कबीरदास की वाणी भी कुछ ऐसे ही अभिव्यक्त हुई हैः–

"पिंजर प्रेम प्रकासिया, बाग्या जोग अनन्त।
संसा षूटा सुख भया, मिल्या पिआरा कंत।।
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
मुख कस्तूरी महमही वाणी फूटी बास।।[26]

इन्होंने जो प्रेम अपने ईश्वर से किया है, उसकी एक अन्य विशेषता यह भी है कि यह प्रेम पूर्णरूपेण मर्यादित एवं शिष्ट है। इनका यह प्रेम भारतीय प्रेम पद्धति का ही अनुगामी रहा है एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही संस्कारपूर्ण ढंग से यह पल्लवित होता गया

है। आत्मा–परमात्मा के चिर–प्रतीक्षित प्रेम संबंध दुल्हा एवं दुल्हन के रूप में परिणत हो गए हैं।
प्रेम की यह लगन आत्मा को दुल्हन के रूप तक पहुँचा देती है, जहाँ परमात्मा स्वयं दूल्हा बनकर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। यह भारतीय प्रेम की ही पराकाष्ठा है, परंतु मर्यादित और शिष्ट। बेनामी जी कहते हैं कि प्रिय (आराध्य) से मिलन की जो लगन भक्त प्रह्लाद एवं मीरा आदि भक्तों को लगी थी, वहीं लगन उन्हें भी लगी हुई हैः–

"मेरी खुश रंग दिल से लागी।
लागी लगन त्यागी बनै।।
ध्रुव लागी प्रह्लाद के लागी, लागी है, मीरा बाई,
बलख बुखारे के ऐसी लागी, छोड़ बादस्याई हुवा बैरागी।।"[26]
"नानक के लागी कबीर के लागी, सजना के बदना सूं राजी।
बेनामी की लगन लागी है, कक्कर के संग पागी।।"[26]

इस प्रकार मधुरा भक्ति में प्रेम भी एक निष्ठता सर्वोपरि है।

### 4. नवधा–भक्ति के विविध रूपों की अभिव्यक्ति

श्री बेनामी जी की भक्ति वैष्णव भक्ति नहीं है, परंतु अध्ययनोपरांत यह तथ्य सामने आया है कि राम, रावण, कृष्ण, प्रह्लाद, शबरी, गाणिका आदि पौराणिक पात्रों के नामोल्लेख के कारण इनकी भक्ति वैष्णव धर्म से ही संबंद्य है। श्री बेनामी जी चूंकि ईश्वर के निर्गुण–निराकार रूप के उपासक थे, इसीलिए इन्होंने तुलसी एवं बाल्मीकी से भिन्न राम को अपनी भक्ति का मूल माना। राम के विषय मे श्री बेनामी जी का कथन है–
"रावण तो अहंकार है, राम ज्ञान पहचान।
जब दोऊ आपे लरे, प्रबल ज्ञान को जान।"[27]
भागवत पुराण में नवधा भक्ति की विशेषताएं इस प्रकार बताई गई हैंः–

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरण पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवदेनम्।।"[28]

इस कथन के आधार पर यदि इनकी भक्ति का मूल्यांकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने ईश्वर के नाम–स्मरण एंव कीर्तन को अपनी भक्ति में पर्याप्त स्थान दिया है। नाम–स्मरण पर बल देते हुए वे लिखते हैंः–

"नाम निरंतर ध्यान धरो, आत्म दीप स्वरूप।
आप आप में लख लेवो, आपही आप अनूप।।"[29]

इन्होंने अपने ग्रंथ के 'बारहखड़ी' अध्याय में नाम–स्मरण की भावना को पर्याप्त विस्तार दिया है, नाम–स्मरण इनकी भक्ति का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग है। जैसे कि पहले ही बता दिया गया है कि यह नाम कहीं राम, कहीं कृष्ण, कहीं ब्रह्म तो कहीं अलख निरंजन एवं ओंकार आदि के नाम में प्रयुक्त हुआ है। एक स्थान पर ओंकार नाम का स्मरण करने का उपदेश देते हुए ये कहते हैंः–

'ऊँकार का सुमरण कर ले, प्राणायाम साधो भाई।'[30]

इनका नाम–स्मरण में गहन विश्वास है।
नवधा भक्ति में ईश्वर के गुण कथन का भी बड़ा महत्त्व माना जाता है। इन्होंने भी अपने प्रभु के गुण कथन विषयक उक्तियाँ स्थान–स्थान पर व्यक्त की हैं। अपने सगुण–निर्गुण के गुणों का बखान करते हुए इन्होंने कहा हैः–

"बेनामी सत्य स्वरूप, सच्चिदानंद आनन्दमय।
हरत सकल दुख द्वन्द्व, जेही परसत सुख सहज में।।
नमो अलख आनन्द, नमो निःष्कलंक विदेही।
नमो सगुण गुण रहित, नमो निज व्यापक देही।।"[31]

भक्ति ग्रंथों में भक्ति के लिए कई विधियों को बतलाया गया है। श्री बेनामी जी ने इन सभी विधियों को अपने ढंग से अपनाया है। ये अपनी भक्ति के भिन्न–भिन्न उपायों के माध्यम से अपने ब्रह्म को प्रसन्न करके उनसे मुक्ति की कामना करना चाहते थे। अपने इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इन्होंने भक्ति को अत्यावश्यक माना है। नवधा भक्ति की कड़ी में दैन्य एवं विनय का भी पर्याप्त महत्त्व स्वीकार किया जाता है। विनय एव दैन्य की इस स्थिति में जीवात्मा स्वयं को हीन तथा अपने आराध्य को सर्वसमर्थ एवं सर्वशक्तिसम्पन्न रूप में स्वीकार करके उसके समक्ष अपनी दीनता प्रकट करता है तथा अपने उद्धार के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना करता है। इसे ही विनय एवं दैन्य कहा जाता है। इन्होंने भी अपने अनेक पदों में ऐसी ही दीनता प्रकट की है। अपनी विनय की भावना प्रकट करते हुए वे लिखते हैंः–

"मुरसद तेरे कदम पे, मेरा मन कायम कीजिये।
इस दोजख के जंजाल से, मुझे काड़ न्यारा कीजिऐ।।
मैं बंदा हूँ तेरा, तेरी बंदगी मुझे दीजिये।
दिल का भरम सब दूर कर, तेरा दर्शदिल दीजिये।।
वजूद से न्यारा दिखाये, काज मेरा कीजिये।
तुम मिले सबमें सबसे न्यारा, दर्श ऐसा दीजिये।।"[32]

इनकी भक्ति में अनेक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। इन भावों में शिष्यभाव, दास भाव एवं कान्ताभाव आदि को प्रमुख माना जा सकता है। भक्ति के निमित्त जो–जो आचरण इन्होंने अपनाए हैं, और इनके निमित्त जिन–जिन अवस्थाओं से ये गुजरे हैं, उनका उल्लेख करना भी मुझे समीचीन प्रतीत होता है। इन्होंने स्वयं को ईश्वर की भक्ति के योग्य बनाने हेतु सत्संगति, आचरण शुद्धि, विषय–वासनाओं का परित्याग, कुसंगति का परित्याग, राग द्वेष, स्वार्थ आदि का परित्याग, वैराग्य धारण करना एवं अंत में, योग–साधना के द्वारा ईश्वर का दीदार एवं उसका सानिध्य आदि आवश्यक अवस्थाओं को प्राप्त किया है। तभी जाकर इन्हें ईश्वर के विशेष अनुग्रह की उपलब्धि हुई है। इनकी दासभाव की भक्ति के विषय में पहले ही बताया जा चुका है अब यदि कांत भाव की भक्ति पर ध्यान दे तो ज्ञात हो जाएगा कि इन्होंने ऐसे भावों की भी अभिव्यक्ति अपने पदों में की है। अपनी भक्ति के अंतिम सोपान में पहुंचकर, इन्होंने अपने कान्ताभाव की अभिव्यक्ति की है। इन्होंने लिखा हैः–

"फेरों की त्यारी हुई, लगन लगी है आय।
दुल्हन दुल्हा इक्ट्ठे कोई दीना पटा बिछाया।।"[33]

इस प्रकार मैं यह कह सकता हूँ कि श्री बेनामी जी ने नवधा–भक्ति की प्रायः सभी अपेक्षाओं को अपनाकर अपने ईश्वर की दत्तचित होकर भक्ति की है। इस नवधा–भक्ति की परिणति नारदीय भक्ति अर्थात् प्रेमा भक्ति में हुई है। इनकी भक्ति में प्रेमा स्वरूपा भक्ति की स्पष्टता देखी जा सकती है। इन्होंने अपने आराध्य के प्रति पूर्णतः समर्पित होकर ही अपनी भक्ति–भावना को अभिव्यक्त किया है। नारद की पराभक्ति की पराकाष्ठा इनकी भक्ति में लक्षित की जा सकती है।

### 5. संत बेनामी जी की भक्ति का सारतत्त्व

इनकी भक्ति को गौणी कोटि की भक्ति नहीं माना जा सकता। इनकी भक्ति ईश्वर के प्रति उनका निश्छल स्वाभाविक एवं शुद्ध प्रेम एवं निःस्वार्थ भावना पर आधृत है। इनकी वाणी में अनेक पद ऐसे मिलते हैं जिनसे इनकी प्रेम रूपा भक्ति के दर्शन होते हैं। स्वार्थ का तो दूर–दूर तक नामोनिशान नहीं है। यदि स्वार्थ है, तो ईश्वर मिलन का ही है, सासांरिक या भौतिकता का नहीं। ऊपर बताए गए आधार के अनुसार इनकी भक्ति श्री नारद की भक्ति का परा,

अंगिरा की भक्ति का रागात्मिका एवं शाण्डिल्य की भक्ति मुख्या रूपों पर आधारित भक्ति केवल भक्ति के लिए भक्ति वाली कोटि में रखी जा सकती है। भक्ति ही इनका साध्य है जिसमें ब्रह्म के प्रति इनका विशेष अनुराग इसकी प्रमुख विशेषता है। श्री बेनामी जी यदि अपनी भक्ति के बदले में कुछ चाहते हैं तो श्री प्रभु का सानिध्य मात्र चाहते हैं, जिसमें उन्हें परमानन्द की ही अनुभूति होगीः–

"जा मरने से जग डरे, सो मेरे आनंद।
कब मरिहूँ कब देखि हूँ, पूरण परमानंद।।"[34]

अपनी निश्छल एवं निःस्वार्थ परंतु प्रेमस्वरूपा भक्ति का ही प्रतिपादन करते हुए श्री बेनामी जी कहते हैंः–

"ऋतुवन्ती पीहर बसे, अन्तर पिय को ध्यान।
कह न सकूं समरन करूँ, ऐसो आतम ज्ञान।।"[35]

ये तो अपने प्रिय (ईश्वर) का ध्यान लगाकर ही नित्य–प्रति उनका स्मरण करते रहते हैं। इनकी भक्ति भी पूर्णतः शुद्धभाव की भक्ति है। इसमें हृदय की निश्छलावस्था का प्रस्फुटन स्थान–स्थान पर हुआ है। अपने शुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए वे लिखते हैंः–

"सबै सहेली पीव की, चहूं दिस पिय पिय होय।
ना जाने या झुण्ड में, कौन सुहागिन होय।।"[36]

ये विषयी संसार में जीवन बेशक जिए जा रहे हैं, परंतु इनका मन पूर्णतः ईश्वर की प्रेम भक्ति में रमा रहता है। इन्हें जगत् की क्षुद्रताओं से कोई सरोकार नहीं है। कोई अभिलाषा यदि शेष है, तो वह अपने महबूब की बंदगी की ही है। अपने आराध्य से यदि कुछ याचना करते हैं, तो भक्ति भी ही याचना करते हैं। अपने हृदय के समस्त भ्रमों को दूर करके उनका दीदार ही इनकी परम अभिलाषा हैः–

"मुरसद तेरे कदम मे, मेरा मन कायम कीजिए।
इस दोजख के जंजाल से, मुझे काड़ न्यारा कीजिए।।
मैं बंदा हूँ तेरा तेरी, बंदगी मुझे दीजिए।
दिल का भरम सब दूर कर, बंदगी मुझे दीजिए।।"[37]

यहाँ इनके हृदय की पवित्र भावनाएँ अपने स्वामी के प्रेम एवं उनकी भक्ति में ही डूबी हुई हैं। इनमें किसी प्रकार के लालच का कोई स्थान नहीं है। गौणी भक्ति की लेशमात्र झलक भी इनसे दिखाई नहीं देती है। यहाँ पर तो हृदय के पवित्र उद्गारों को अपने प्रभु तक पहुँचाने की तड़प ही दिखाई देती है। इन्होंने सहज भाव से रागात्मिका भक्ति भाव में डूबकर स्वयं को अलख, निरंजन की भक्ति में समर्पित कर दिया। यदि ध्यान से देखें तो ज्ञात हो जाएगा कि प्रेम भक्ति, रागात्मिक भक्ति एवं भाव भक्ति में तनिक भी अन्तर नहीं है। इन तीनों का संबंध निःस्वार्थपूर्ण एवं अनन्य भक्ति से ही है। इनकी इस भक्ति–भावना में बाह्याडम्बर को कहीं भी स्थान नहीं है। इनकी यह भक्ति–साधना बाहरी न होकर अन्तर्मुखी प्रतीत होती है। क्योंकि श्री बेनामी जी का स्पष्ट मानना है कि जब तक मन की दशा उपयुक्त नहीं है, तब तक भक्ति जैसे पवित्र कर्म के प्रति समर्पित हुआ ही नहीं जा सकता। ये मानते हैं कि भक्ति का संबंध मन से होता है और मन में ही यह विशेषता होती है कि वह ब्रह्म के साथ सामंजस्य बैठा सके। वे कहते हैं कि मन अन्तर्मुखी होता है और ब्रह्म भी अन्तर्मुखी होता है। अतः अन्तर्मुखी भाव से ही ब्रह्म भी पूजा अर्थात् भक्ति की जा सकती है।इन्होंने लिखा हैः–

"मन की मन पूजा करे, यही ब्रह्म की पूज।
जब मन में मन लय हुआ, यही ब्रह्म की सूज।।"[38]

इनके इस कथन से स्पष्ट द्योतित होता है कि अन्य निर्गुण संत कवियों की ही भांति इन्होंने भी अन्तर्मुखी भाव से ब्रह्म की पूजा अर्थात् भक्ति की है। इनकी अन्तर्मुखी भक्ति–भावना से इनकी प्रेमा भक्ति की भी स्वतः पुष्टि हो जाती है। श्री दादूदयाल के इस कथन से भी संतों की अन्तर्मुखी भक्ति प्रवृत्ति का ही बोध होता है, संतों की साधना अन्तर्मुखी थी। प्रायः सभी संतों ने, भक्त कवियों ने मुख्य रूप से भक्ति के दो ही भेद बताए हैं। एक भेद वह जिसके आलोक में श्री बेनामी जी भी भक्ति पर प्रकाश डाला गया तथा दूसरा भेद वह है, जिसे गौण मानकर श्री बेनामी जी ने अपनाया ही नहीं। भक्ति के विविध भेदों पर प्रकाश डालते हुए मैं भी यह जान पाया हूँ कि इनकी भक्ति, भक्ति के प्रथम भेद पर ही आधारित है। प्रेमाभक्ति के संदर्भ में ही ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह भी सामने आता है कि इनके योग–साधनात्मक पदों में इनकी भक्ति का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह भी हृदय की रागात्मक वृत्ति को ही दर्शाता है। योगात्मक भक्ति–साधना का उद्देश्य भी अपने ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त करके ब्रह्ममय ही हो जाना है। श्री बेनामी जी की भक्ति चाहे जिन भी पदों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हो, उसकी परिणति ब्रह्म में एकाकार होने की ही रहती है। इसमें किसी काम को साधने की प्रवृत्ति कत्तई नहीं है। ये लिखते हैंः–

"सतगुरू सोवे सुन्य में, अनहदपुर के बीच।
सुरत निरत कर खोज ले, उलट पवन दृग मीच।।[39]

अतः योगात्मक साधना के पदों से भी इनकी निष्काम भक्ति के ही दर्शन होते हैं। सर्वप्रथम जीवात्मा अपना यह दृढ़ मत कर लेती है कि वह परमात्मा से भिन्न है ही नहीं। जब दोनों अद्वैत हैं, तो फिर माया की उपस्थिति के कारण जो द्वैतभाव है, उसे समाप्त हो जाना चाहिए। यही प्रेरणा इनकी भक्ति का मूल स्त्रोत है। 'आरती–अद्वैतज्ञान' में श्री बेनामी जी ने अद्वैत दर्शनाधारित भक्ति को ही प्रकट किया हैः–

"शब्द ज्ञान अंजन दिया, नैना लिया सार।
ज्ञान अद्वैत प्रगट किया, गुरूचरण चित्त धार।।[40]

अपनी प्रेमा शक्ति में इन्होंने ईश्वर को अजपा मानकर ही अपना जाप प्रारम्भ किया है। अपनी इस भक्ति के लिए उन्हें किसी बाह्य पदार्थ अथवा वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है. प्रभु से अगाध प्रेम की भावना जो है। इनका आने–जाने वाला प्रत्येक श्वास ही उस अजपा का जाप करता है। इनका प्रत्येक श्वास उस परमतत्त्व को समर्पित है। इनका कथन हैः–

"स्वासां की कर सुमरनी, कर अजपा को जाप।
परमतत्त्व का ध्यान धर, सोहंग आपै आप।।"[41]

यह इनकी परा भक्ति की ही महिमा है कि इन्होंने अपने अज्ञात अनदेखे प्रीतम के ही साथ अपनी होली खेलना चाहते हैंः–

"होरी खेलन दैरी ननदिया"
जो तू कहेगी सोई मैं करूँगी, अनहद की धुन लैरी ननदिया।।
चम दृष्टि सृष्ठि जगसारा, समता को सुख लैरी ननदिया।।
दुई धुल को दूर बगाओ, ज्ञान गुलाल उडैरी ननदिया।
बेनामी ऐसी होरी खेलै, अब कछु कीह न परैरी ननदिया।।"[42]

इनकी आध्यात्मिक होली प्रेमपूर्ण भक्ति मार्ग पर चलकर ही अपने आध्यात्मिक मुकाम पर पहुँची दिखाई देती है। इन्होंने अपनी प्रेमा भक्ति को जीवन–मृत्यु के बंधन से मुक्ति पाने के हथियार के रूप में प्रयोग किया है। इनका मानना है कि प्रेम ही एक ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा अपने प्रियतम के प्रति पूर्णतः समर्पित हुआ जा सकता है। जितना समर्पण प्रेम में है, उतना शायद किसी दूसरे संबंध में नहीं। यही कारण है कि इन्होंने प्रेमा भक्ति को चुना है, ताकि समर्पण भाव के द्वारा मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की जा सकेः–

"आषा तृष्णा नदिया धैरी, लख चौरासी धार।
बिना गुरू कोई ना तरा जी, बहा जाय संसार।।"[43]

प्रेम की परिणति अन्ततः समर्पण की बेदी पर जाकर ही होती है। जब दोनों प्रेमियों का समर्पण की बेदी पर जाकर मिलन हो जाता है तो दोनों को पूर्णता का अनुभव होता है। प्रेमाभक्ति का अंजाम भी इसी बेदी पर आकर होता है। जिस प्रकार विवाह के उपरांत मिलन की अवस्था आती है, ठीक उसी प्रकार इनका भी अपने प्रियतम से मिलन हो जाता है। इनके निम्नलिखित पद को पढ़ने से तो कुछ यही बोध हो रहा हैः–

"बेनामी के ब्याह को, गावै समझ विचार।
आवागमन जिनके नहीं, कोई मिले सार में सार।।"[43]

संक्षेप में, यह कहना उचित जान पड़ता है कि वे एक उच्च आदर्शवादी सगुण–निर्गुण के द्वन्द्व से ऊपर उठे हुए ईश्वर समर्पित भक्त कवि थे। इनको ईश्वर प्रेम सर्वोपरि था। ईश्वर के प्रेम रस में डूबे हुए इन्होंने नारदीय भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति को अपनी भक्ति में प्रमुख स्थान दिया। नवधा–भक्ति के प्रायः सभी लक्षण इनकी भक्ति में दृष्टिगोचर हैं। ईश्वर प्रेम इनकी भक्ति का मूल स्त्रोत हैं एवं प्रेम को प्रेम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

## 6. सन्दर्भ सूची


1. डॉ0 इन्दिरा सिंहः 'कबीर के काव्य का साहित्यिक अनुशीलन', पृ0112
2. वही, पृ0112
3. वही, पृ0112
4. वही, पृ0112
5. डॉ0 मुंशीराम शर्मा : 'भक्ति का विकास' (1958) पृष्ठ62
6. स्वामी विवेकानंद : भक्ति रहस्य, प्रथम संस्करण (1986) पृ031
7. डॉ0 हरिवंश लाल शर्माः सूर सरोवर, पृष्ठ8
8. स्वामी विवेकानंद : भक्ति रहस्य (1958) पृष्ठ31
9. स्वामी विवेकानंदः 'भक्ति' रहस्य (1859) पृ05–6
10. डॉ0 मुंशीराम शर्मा : भक्ति का विकास (1958) पृ089
11. Swami Tyagisananda : Philosophy of the Bhagavata, The cultural Heritage of India, I.e. 3 P.298
12. 'बेनामी आत्म–बोध', 'बारहखड़ी' शीर्षक, पृ01
13. बेनामी आत्म–बोध', 'आरती' शीर्षक, पृ06
14. वही, पृ06
15. 'बेनामी आत्म–बोध, 'बेनामी गीता शीर्षक, पृ052
16. वही, 'उपदेश सतर्क चिंतामणि', शीर्षक पृ0161
17. वही, 'सिद्धांतवार्त्ता' शीर्षक, पृ057
18. 'बेनामी आत्म–बोध', 'सिद्धांतवार्त्ता' शीर्षक, पृ068
19. वही, 'सिद्धांतवर्त्ता' पृ070
20. वही, पृ071
21. वही, पृ075
22. वही, 'उपदेश चिंतामणी' शीर्षक, पृ081
23. बेनामी आत्म–बोध, 'पद' शीर्षक, पृ0115
24. वही, पृ0116
25. बेनामी आत्म–बोध, 'सिद्धांतवार्त्ता' शीर्षक पृ066
26. भागवत–पुराण सप्तम् स्कन्द
27. बेनामी आत्म–बोध, 'बारहखड़ी' शीर्षक पृ01
28. बेनामी आत्म–बोध, 'मैरठी' शीर्षक पृ0138
29. अंतः साक्ष्य, 'आरती' शीर्षक पृ06
30. बेनामी आत्म–बोध, 'मरैठी' शीर्षक, पृ0144
31. वही, 'परम हंसन का विवाह', शीर्षक, पृ092
32. बेनामी आत्म–बोध, 'सिद्धांतवार्त्ता' शीर्षक पृ071
33. वही, पृ071
34. वही, पृ072
35. बेनामी आत्म–बोध, 'मरैठी' शीर्षक, पृ0144
36. वही, 'सिद्धांतवार्त्ता' शीर्षक पृ068
37. बेनामी आत्म–बोध, 'छप्पेय' शीर्षक, पृ0155
38. वही, 'आरती अद्वैत–ज्ञान' शीर्षक, पृ08
39. बेनामी आत्म–बोध, 'आल्हा' शीर्षक, पृ094
40. वही, 'होरी', शीर्षक, पृ0113
41. वही, 'पद' शीर्षक, पृ0133
42. बेनामी आत्म–बोध 'परमहंसन का विवाह' शीर्षक, पृ094